भगवदुमास्वामिप्रणीतस्य
तत्वार्थसूत्रस्य
श्री श्रुतसागरसूरिविरचिता

तत्त्वार्थवृत्तिः

★ अनुवादिका ★

पूज्य गणिनी आर्यिका १०५ श्री सुपार्श्वमती माताजी

★ सम्पादक ★

डॉ. चेतनप्रकाश पाटनी, जोधपुर

★ सह-सम्पादक ★

बा.ब्र. डॉ. प्रमिला जैन

★ अर्थ सहयोग ★

श्री आकाश, आलोक, आशीष एवं
अनुराग की माताश्री श्रीमती मुन्नीदेवी
सीलचर (आसाम)

स्वतंत्रता अमृत महोत्सव को भेंट

उपभोगश्च परिभोगश्च उपभोगपरिभोगौ तयोः परिमाणम् उपभोगपरिभोगपरिमाणम्। भोगोपभोगपरिमाणमिति च क्वचित्पाठो वर्तते। तत्र अशनादिकं यत्सकृद्भुज्यते स भोगः, वस्त्रवनितादिकं यत् पुनः पुनर्भुज्यते स उपभोगः। उपभोगपरिभोगपरिमाणव्रते नियतकालसम्बन्धेऽपि मद्यं मांसं मधु च सदैव परिहरणीयं त्रसघातनिवृत्तचित्तेन पुंसा। केतकिनिम्बकुसुमार्द्रकमूलकसर्वपुष्पानन्तकायिकछिद्रशाकनालीनलादिकं बहुजन्तुयोनिस्थानं तदपि यावज्जीवं परिहर्तव्यं बहुघातात्पफलत्वात्। तथा चोक्तम्—

"अल्पफलबहुविघातान्मूलकमार्द्राणि शृङ्गवेराणि।
नवनीतनिम्बकुसुमं केतकमित्येवमवहेयम् ॥"

[रत्नक० ३।३६]

अथोपभोगविचारः—यानवाहनभूषणवसनादिकमेतावन्मात्रमेव ममेष्टमन्यदनिष्टमिति ज्ञात्वा अनिष्टपरिहारः कालमर्यादया यावज्जीवं वा कर्त्तव्यः।

संयममविराधयन् अतति भोजनार्थं गच्छति यः सोऽतिथिः। अथवा न विद्यते

अशन (भोजन), पान, गन्ध, माला, ताम्बूल आदि **उपभोग** कहलाते हैं। आच्छादन, प्रावरण (ओढ़ने-बिछाने आदि के वस्त्र) आभूषण, शय्या, आसन, घर, यान, वाहन, वनिता आदिक वस्तुएँ **परिभोग** कहलाती हैं। उपभोग और परिभोग में आने वाली वस्तुओं का परिमाण करना उपभोगपरिभोग परिमाण है। उपभोग और परिभोग के स्थान में भोग और उपभोग का भी प्रयोग किया जाता है। जो अशन आदि वस्तु एक बार भोगने में आती है उसे भोग कहते हैं और जो स्त्री, वस्त्र, वाहन आदि वस्तुयें बार-बार भोगने में आती हैं, वे उपभोग हैं। नियतकाल सम्बन्धी भी उपभोग-परिभोग परिमाणव्रत में त्रसघात के त्यागी पुरुषों को मद्य, मांस, मधु का यावज्जीवन त्याग कर देना चाहिए तथा जिनके भक्षण में फल तो थोड़ा होता है और जीवों की हिंसा बहुत होती है, ऐसे केतकी के फूल, नीम के फूल, अदरख, मूली, सर्वपुष्प, अनन्तकायिक, छिद्रवाली शाक, नाली, नल आदि बहुत जीवों के योनिस्थान रूप वस्तुओं का यावज्जीवन त्याग करना चाहिए। सोही कहा है—

"जिनके सेवन से अल्पफल और बहुत जीवों का घात होता है ऐसे मूल (कन्दमूल), गीला अदरक, मक्खन, नीम के फूल, केतकी के फूल, आदि का त्याग कर देना चाहिए।"

उपभोग विचार—यान, वाहन, आभूषण, वस्त्र आदि उपभोग वस्तुओं में "इतनी वस्तुएँ मुझे इष्ट हैं, अन्य वस्तुएँ अनिष्ट हैं" ऐसा जानकर कालमर्यादा से वा यावज्जीवन त्याग करना चाहिए।

संयम की विराधना नहीं करते हुए भोजन (आहार) के लिए (अतति) भ्रमण करते हैं उनको अतिथि कहते हैं। अथवा जिसके प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया आदि तिथियाँ नहीं हैं, उसे

तिथिः प्रतिपद्द्वितीयातृतीयादिका यस्य सः अतिथिः अनियतकालभिक्षागमन इत्यर्थः। अतिथये समीचीनो विभागः निजभोजनाद् विशिष्टभोजनप्रदानमतिथिसंविभागः। स चतुर्विधो भवति—भिक्षादानम् उपकरणवितरणमौषधविश्राणनमावासप्रदानमिति। यो मोक्षार्थे उद्यतः संयमतत्परः शुद्धश्च भवति तस्मै निर्मलेन चेतसा अनवद्या भिक्षा दातव्या, धर्मोपकरणानि च पिच्छपुस्तकपट्टकमण्डल्या(ल्वा)दीनि रत्नत्रयवर्द्धकानि प्रदेयानि, औषधमपि योग्यमेव देयम्, आवासश्च परमधर्मश्रद्धया प्रदातव्यः। अत्र च जिनस्नपनपूजादिकं वक्तव्यम्। एतानि चत्वारि शिक्षाव्रतानि भवन्ति। मातृपित्रादिवचनवदपत्यानामणुव्रतानां शिक्षाप्रदायकानि अविनाशकारकाणीत्यर्थः।

अथ चशब्देन गृहीतम् अपरमपि श्रावकव्रतं प्रतिपादयन् सूत्रमिदमाचष्टे—

मारणान्तिकीं सल्लेखनां जोषिता ॥२२॥

निजपरिणामेन पूर्वभवादुपार्जितमायुः इन्द्रियाणि च बलानि च तेषां कारणवशेन योऽसौ विनाशः संक्षयः तन्मरणमुच्यते। **"मृङ् प्राणत्यागे"** [ ] इति वचनात्।

अतिथि कहते हैं। जिनके अनियतकाल भिक्षागमन है अर्थात् भिक्षा का गमन-काल निश्चित नहीं है, उसे अतिथि कहते हैं। उस अतिथि के लिए समीचीन विभाग, निज भोजन में से विशिष्ट भोजन प्रदान करना अतिथिसंविभाग है। वह अतिथिसंविभाग चार प्रकार का है—आहारदान, उपकरण (शास्त्र पिच्छिका कमण्डलु) दान, औषधिदान और वसतिकादान (निवासस्थानदान) जो मोक्ष पाने के लिए उद्यत है, संयम के पालन करने में तत्पर है और शुद्ध है, उस अतिथि के लिए निर्मल-चित्त (शुद्धमन) से निर्दोष भिक्षा देनी चाहिए। रत्नत्रय के वर्द्धक पिच्छिका, पुस्तक, स्लेट, कमण्डलु आदि धर्मोपकरण भी प्रदान करने चाहिए। योग्य औषधि देनी चाहिए तथा परम धर्मश्रद्धापूर्वक निवासस्थान भी देना चाहिए। सूत्रस्थ 'च' शब्द से जिनेन्द्रबिम्ब का अभिषेक-पूजन आदि श्रावक के कर्त्तव्यों का भी कथन करना चाहिए। अर्थात् १२ व्रतों के अन्तर्गत देवपूजन, अभिषेक, स्वाध्याय आदि भी करना चाहिए। ये चार **शिक्षाव्रत** होते हैं; जिसप्रकार माता, पिता आदि के वचन पुत्र-पौत्रादिक की शिक्षा के लिए होते हैं; उनके अविनाश के कारण होते हैं, उसी प्रकार अणुव्रतों के शिक्षाप्रदायक और उनके अविनाश के कारण होने से इनको शिक्षाव्रत कहते हैं।

अब 'च' शब्द से गृहीत दूसरे भी श्रावक के व्रतों का प्रतिपादन करते हुए यह सूत्र कहते हैं—

वह (गृहस्थ) मारणान्तिक सल्लेखना को प्रीतिपूर्वक सेवन करने वाला होता है ॥२२॥

अपने परिणामों से उपार्जित आयु, इन्द्रियों और मन, वचन, काय, रूप, बल का कारण-विशेष से जो नाश होता है, क्षय होता है, उसे **मरण** कहते हैं। मरण ही अन्तमें है जिसके वह

ज्ञानोपयोग उच्यते ।४। भवदुःखादनिशं भीरुता संवेगः कथ्यते ।५। आहाराभयज्ञानानां त्रयाणां विधिपूर्वकमात्मशक्त्यनुसारेण पात्राय दानं शक्तितस्त्याग उच्यते ।६। निजशक्ति-प्रकाशनपूर्वकं जैनमार्गाविरोधी कायक्लेशः शक्तितस्तप उच्यते ।७। यथा भाण्डागारेऽग्नौ समुत्थिते येन केनचिदुपायेन तदुपशमनं विधीयते बहूनामुपकारकत्वात् तथाऽनेकव्रत-शीलसमन्वितस्य यतिजनस्य कुतश्चिद्विघ्ने समुत्पन्ने सति विघ्ननिवारणंस माधिः, साधूनां समाधिः साधुसमाधिः ।८। अनवद्येन विधिना गुणवतां दुःखापनयन वैयावृत्यमुच्यते ।९। अर्हतां स्नपनपूजनगुणस्तवननामजपनादिकमर्हद्भक्तिर्निगद्यते ।१०। आचार्याणामपूर्वोप-करणदानं सन्मुखगननं सम्भ्रमविधानं पादपूजनं दानसन्मानादिविधानं मनःशुद्धियुक्तोऽनु-रागश्चाचार्यभक्तिरुच्यते ।११। तथा बहुश्रुतभक्तिरपि ज्ञातव्या ।१२। तथा प्रवचने रत्न-त्रयादिप्रतिपादकलक्षणे मनःशुद्धियुक्तोऽनुराग प्रवचनभक्तिरुद्यते ।१३। सामायिके चतुर्वि-शतिस्तवे एकतीर्थंकरवन्दनायां कृतदोषनिराकरणलक्षणप्रतिक्रमणे नियतकालागामिदोष-परिहरणलक्षणे प्रत्याख्याने शरीरममत्वपरिहरणलक्षणे कार्योत्सर्गे च एवंविधे षडावश्यके यथाकालप्रवर्तनम् आवश्यकापरिहाणिरुच्यते ।१४। ज्ञानेन दानेन जिनपूजनविधानेन तपोऽनुष्ठानेन जिनधर्मप्रकाशनं मार्गप्रभावना भण्यते ।१५। यथा सद्यःप्रसूता धेनुः स्ववत्से स्नेहं करोति तथा प्रवचने सधर्मणि जने स्नेहत्वं प्रवचनवत्सलत्वमभिधीयते ।१६।

वाले ज्ञान में निरन्तर उद्योग करना **अभीक्ष्णज्ञानोपयोग** है ।।४।। संसार के दुःखों से भयभीत रहना **संवेग** है ।।५।। अपनी शक्ति के अनुसार आहार, अभय और ज्ञान का पात्र के लिए विधिपूर्वक दान देना **शक्तितस्त्याग** है ।।६।। अपनी शक्ति के अनुसार जिनेन्द्रकथित कायक्लेश करना तप है ।।७।। जैसे भाण्डागार में अग्नि लग जाने पर बहुउपकारी होने से किसी भी उपाय से उसका शमन किया जाता है, उसी प्रकार व्रतशीलधारी यतिजनों पर किसी निमित्त से कोई विघ्न उपस्थित होने पर उस विघ्न को दूर करना साधुसमाधि है ।।८।। निर्दोष विधि से गुणवान पुरुषों के दुःख दूर करना **वैयावृत्य** है ।।९।। अरिहन्त का अभिषेक, पूजन, गुणस्तवन, नाम का जप आदि करना **अर्हद्भक्ति** है ।।१०।। आचार्यदेव को नूतन उपकरण (पिच्छिका कमण्डलु शास्त्र आदि) प्रदान करना, उनके सन्मुख गमन, उनका आदर, पादपूजन, सम्मान और मनःशुद्धि युक्त उनके प्रति अनुराग **आचार्यभक्ति** है ।।११।। इसी प्रकार उपाध्याय के प्रति अनुराग **बहुश्रुतभक्ति** है ।।१२।। रत्नत्रयादि के प्रतिपादक आगममें मनःशुद्धियुक्त अनुराग का होना **प्रवचनभक्ति** है ।।१३।। रागद्वेष का परिहार सामायिक है, चौबीस तीर्थंकर का स्तवन स्तुति है। एक तीर्थंकर की स्तुति वन्दना है। किये हुए दोषों का निराकरण करना प्रतिक्रमण है। नियत काल तक भविष्यकालीन पापों का परिहार प्रत्याख्यान है। शरीर का ममत्व छोड़ना कायोत्सर्ग है। इन छह आवश्यकों में यथाकाल प्रवृत्ति करना **आवश्यका-परिहाणि** है ।।१४।। ज्ञान, दान, जिनपूजन-विधान और तप-अनुष्ठान के द्वारा जिन धर्म का प्रकाशन करना **मार्गप्रभावना** है ।।१५।। सद्यः प्रसूता गाय जिस प्रकार अपने बछड़े से प्रेम करती है, उसी प्रकार प्रवचन और साधर्मीजनों के प्रति स्नेहत्व होना **प्रवचनवत्सलत्व** है ।।१६।।

अत्र समासशुद्धिः—दर्शनस्य विशुद्धिः दर्शनविशुद्धिः। विनयेन सम्पन्नता परिपूर्णता विनयसम्पन्नता। शीलानि च व्रतानि च शीलव्रतानि तेषु शीलव्रतेषु न अतिचारः अनति-चारः। अभीक्ष्णमविच्छिन्नं ज्ञानस्य उपयोगोऽभ्यासः अभीक्ष्णज्ञानोपयोगः, अभीक्ष्ण-ज्ञानोपयोगश्च संवेगश्च अभीक्ष्णज्ञानोपयोगसंवेगौ। शक्तितस्त्यागश्च तपश्च शक्तितस्त्याग-तपसी। साधूनां साधुषु वा समाधिः साधुसमाधिः। व्यावृत्तेर्भावो वैयावृत्यं वैयावृत्यस्य करणं विधानं वैयावृत्यकरणम्। अर्हन्तश्च आचार्याश्च बहुश्रुताश्च प्रवचनञ्च अर्हदा-चार्यबहुश्रुतप्रवचनानि तेषां तेषु वा भक्तिः अर्हदाचार्यबहुश्रुतप्रवचनभक्तिः। सुमुहूर्ताद्यिन-पेक्षम् अवश्यं निश्चयेन कर्तव्यानि आवश्यकानि तेषामपरिहाणिः आवश्यकाऽपरिहाणिः। मार्गस्य प्रभावना मार्गप्रभावना। प्रवचने वत्सलत्वं प्रवचनवत्सलत्वम्। आवश्यका-परिहाणिश्च मार्गप्रभावना च प्रवचनवत्सलत्वञ्च आवश्यकापरिहाणिमार्गप्रभावनाप्रवचन-वत्सलत्वं समाहारो द्वन्द्वः। इति षोडश प्रत्ययाः। एतानि षोडशकारणानि तीर्थकरत्वस्य तीर्थङ्करनामकर्मण आस्रवकारणानि भवन्ति।

अथ उच्चनीचगोत्रद्वयस्यास्रवसूचनपरं सूत्रद्वयं मनसि धृत्वा तत्र तावन्नीचैर्गोत्रस्य आस्रवकारणं निरूपयन्तः सूत्रमिदमाहुः—

परात्मनिन्दाप्रशंसे सदसद्गुणोच्छादनोद्भावने च नीचैर्गोत्रस्य ।।२५।।

यहाँ इस सूत्र को संक्षेप में कहते हैं–दर्शन की विशुद्धि, दर्शन विशुद्धि है। विनय से सम्पन्नता परिपूर्णता विनयसम्पन्नता है। शील और व्रत शीलव्रत और उन शीलव्रतों में अतिचार न होना–शीलव्रतेष्वनतिचार है। निरन्तर ज्ञान का उपयोग अभ्यास अभीक्ष्णज्ञानोपयोग है। अभीक्ष्णज्ञानो-पयोग और संवेग अभीक्ष्णज्ञानोपयोगसंवेगौ है। शक्ति के अनुसार त्याग और तप शक्तितस्त्या-गतपसी है। साधुओं की वा साधुओं में समाधि–साधुसमाधि है। व्यावृत्ति का भाव वैयावृत्य है और वैयावृत्य करना वैयावृत्यकरण है। अर्हन्त, आचार्य, बहुश्रुत और प्रवचन अर्हदाचार्यबहुश्रुत-प्रवचनानि, उनमें अनुराग, भक्ति, अर्हदाचार्यबहुश्रुतप्रवचनभक्ति। सुमुहूर्तादि की अपेक्षा न करके अवश्य करने योग्य षड़ावश्यकों का अपरिहार (अवश्य करना) आवश्यकापरिहाणि है। मार्ग की प्रभावना–मार्गप्रभावना है। प्रवचन में वत्सलत्व–प्रवचनवत्सलत्व है। इस प्रकार समास करने के बाद "आवश्यकपरिहाणिमार्गप्रभावनाप्रवचनवत्सलत्वं" यह समाहार द्वन्द्व समास करना चाहिए। ये दर्शनविशुद्धि आदि सोलह प्रत्यय (कारण) भावनायें तीर्थंकर नामकर्म के आस्रव की कारण होती हैं।

अब उच्च और नीच दो गोत्र के आस्रव का कथन करने वाले दो सूत्रों को मन में धारण करके प्रथम नीच गोत्र के आस्रव के कारणों का निरूपण करने के लिए आगे का सूत्र कहते हैं—

परनिन्दा, आत्मप्रशंसा, सद्गुणों का उच्छादन और असद्गुणों का उद्भावन ये नीच गोत्र के आस्रव के कारण हैं ।।२५।।

समितिषु प्रवर्तमानस्य पुरुषस्य तत्प्रतिपालनार्थं प्राणव्यपरोपणषडिन्द्रियविषयपरिहरणं संयम उच्यते । स संयमो द्विविधः—अपहृतसञ्ज्ञक उपेक्षासंज्ञकश्च । तत्र अपहृतसंज्ञकस्त्रिविधः । तद्यथा—प्रासुकवसतिभोजनादिमात्रबाह्यसाधनस्य स्वाधीनज्ञानादिकस्य मुनेर्जन्तूपनिपाते आत्मानं ततोऽपहृत्य दूरीकृत्य जीवान् पालयत उत्कृष्टः संयमो भवति । मृदुना मयूरपिच्छेण प्रमृज्य परिहरतो मध्यमः संयमः । उपकरणान्तरेण प्रमृज्य परिहरतो निकृष्टः संयमः इत्यपहृतसंयमस्त्रिविधः । अथोपेक्षासंयम उच्यते—देशकालविधानज्ञस्य परेषामनुरोधेन व्युत्सृष्टकायस्य त्रिगुप्तिगुप्तस्य मुनेः रागद्वेषयोरनभिष्वङ्ग उपेक्षासंयमः । उपार्जितकर्मक्षयार्थं तपस्विना तप्यते इति तपः, तद् द्वादशविधं वक्ष्यमाणविस्तरं ज्ञातव्यम् । संयमिनां योग्यं ज्ञानसंयमशौचोपकरणादिदानं त्याग उच्यते । नास्ति अस्य किञ्चन किमपि अकिञ्चनो निष्परिग्रहः तस्य भावः कर्म वा आकिञ्चन्यम् निजशरीरादिषु संस्कारपरिहाराय ममेदमित्यभिसन्धिनिषेधनमित्यर्थः । तदाकिञ्चन्यं चतुःप्रकारं भवति—स्वस्य परस्य च जीवितलोभपरिहरणं स्वस्य परस्य च आरोग्यलोभपरिहरणं स्वस्य परस्य च इन्द्रियलोभपरित्यजनं स्वस्य परस्य चोपभोगलोभोज्झनञ्चेति ।

प्रवृत्ति करने वाले मुनिराज के समितियों का पालन करने के लिए छह काय के जीवों की विराधना का और पाँच इन्द्रिय तथा मानसिक विषयों का त्याग करना **उत्तम संयम** है। वह संयम दो प्रकार का है-अपहृत संज्ञक और उपेक्षा संज्ञक। उत्तम, मध्यम और जघन्य के भेद से अपहृत संज्ञक संयम तीन प्रकार का है। प्रासुकवसती भोजन आदि है बाह्य साधन जिसके, ऐसे स्वाधीन ज्ञानादि वाले मुनि के स्थान में प्राणियों का समागम हो जाने पर जो मुनि स्वयं को वहाँ से हटाकर जीवों की रक्षा करता है उसके उत्तम अपहृत संयम होता है। अर्थात् जो मुनि जीवों के स्थान से स्वयं दूर हो जाता है, जन्तुओं को वहाँ से नहीं हटाता है, वह उत्तम अपहृत संयम है। कोमल मयूरपिच्छिका से जीवों को हटाने वाले के मध्यम अपहृत संयम होता है। मयूरपिच्छिका के सिवाय अन्य किसी वस्तु से प्राणियों को हटाता है उसके जघन्य अपहृत संयम होता है। इस प्रकार अपहृत संयम तीन प्रकार का है। अब उपेक्षासंयम कहते हैं– जो देशकाल का ज्ञाता है, दूसरों के अनुरोध से जिसने काय के ममत्व का त्याग किया है तथा जो तीन गुप्ति का धारक है, ऐसे मुनिराज के जो रागद्वेष का त्याग होता है, वह उपेक्षा संयम है अर्थात् रागद्वेष का त्याग करना उपेक्षासंयम है। उपार्जित कर्मों का क्षय करने के लिए तपस्वियों के द्वारा जो तपा जाता है उसको **तप** कहते हैं। यह तप १२ प्रकार का है। इसका विस्तारपूर्वक वर्णन तपों के वर्णन में करेंगे। संयमीजनों के योग्य ज्ञान, संयम और शौच के उपकरण आदि देना **त्याग** है*। नहीं है कुछ भी जिसके वह अकिंचन निष्परिग्रही कहलाता है। अकिंचन का भाव वा कर्म **आकिंचन्य** कहलाता है। अपने शरीर या पर पदार्थों में संस्कारों का परिहार करने के लिए 'यह मेरा है' इस प्रकार के मोह (ममता) का त्याग करना **उत्तम आकिंचन्य धर्म** है। इसके चार भेद हैं—अपने और पर के जीवन के लोभ का त्याग करना। अपने और पर के

*ज्ञानोपकरण—शास्त्र। संयमोपकरण—पिच्छिका। शौचोपकरण—कमण्डलु। आदि शब्द से आहार आदि।

पूर्वानुभुक्तवनितास्मरणं वनिताकथास्मरणं वनितासङ्गासक्तस्य शय्यासनादिकञ्च अब्रह्म तद्वर्जनात् ब्रह्मचर्यं परिपूर्णं भवति । स्वेच्छाचारप्रवृत्तिनिवृत्त्यर्थं गुरुकुलवासो वा ब्रह्मचर्यमुच्यते । गुप्तिसूत्रं प्रवृत्तिनिग्रहार्थम्, तत्रासमर्थानां प्रवृत्त्यभ्युपायप्रदर्शनार्थं द्वितीयं समितिसूत्रम् । इदन्तु तृतीयं सूत्रं दशविधधर्मकथकं पञ्चसमितिषु प्रवर्तमानस्य मुनेः प्रमादपरिहरणार्थं बोद्धव्यम् । क्षमा च मार्दवञ्च आर्जवञ्च सत्यञ्च शौचञ्च संयमश्च तपश्च त्यागश्च आकिञ्चन्यञ्च ब्रह्मचर्यञ्च क्षमामार्दवार्जवसत्यशौचसंयमतपस्त्यागाकिञ्चन्यब्रह्मचर्याणि । उत्तमानि दृष्टप्रयोजनपरिवर्जनानि च तानि क्षमादीनि तानि तथोक्तानि, एतानि दश धर्म इति धर्मसंज्ञानि संवरकारणानि वेदितव्यानीति क्रियाकारकसम्बन्धः । तप्तलोहपिण्डवत् क्रोधादिपराभूतेन मुनिना उत्तमक्षमादीनि स्वपरहितैषिणा कर्तव्यानि ।

अथेदानीमनुप्रेक्षानिरूपणार्थं सूत्रमिदमुच्यते—

अनित्याशरणसंसारैकत्वान्यत्वाशुच्यास्रवसंवरनिर्जरालोकबोधिदुर्लभधर्मस्वाख्याततत्त्वानुचिन्तनमनुप्रेक्षाः ।। ७ ।।

आरोग्य के लोभ का त्याग करना। अपने और पर के इन्द्रियों के लोभ का त्याग करना। अपने और पर के उपभोग्य वस्तु के लोभ का त्याग करना। पूर्वमें भुक्त वनिताओं का स्मरण करना, स्त्री सम्बन्धी कथाओं का स्मरण करना, ललनाओं में आसक्ति का त्याग नहीं करना, ललनाओं के द्वारा सेवित शयन, आसन आदि का उपयोग करना आदि कार्यों से ब्रह्मचर्य व्रत का घात होता है अतः इनका त्याग करने से ब्रह्मचर्य व्रत परिपूर्ण होता है। स्वेच्छाचार की प्रवृत्ति की निवृत्ति के लिये गुरुकुल में निवास करना, ब्रह्मचर्य कहलाता है। मन, वचन और काय से स्त्री मात्र के सेवन का त्याग करना **ब्रह्मचर्य** व्रत है। विषयों में प्रवृत्ति को रोकने के लिये प्रथम सूत्र में गुप्ति का वर्णन किया गया है। जो गुप्ति के पालन में असमर्थ है, उसको प्रवृत्ति के उपाय को बतलाने के लिये द्वितीय सूत्र में समिति बतलाई गई है। और समिति में प्रवृत्ति करने वाले मुनि को प्रमाद का परिहार करने के लिये तृतीय सूत्र में दस प्रकार के धर्म का वर्णन किया है। ये उत्तम क्षमा आदि दस धर्म संवर और निर्जरा के कारण हैं। इनमें उत्तम विशेषण श्रुतानुभूतदृष्ट प्रयोजन का निषेध करने के लिये दिया गया है। ये उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव शौच, सत्य, संयम, तप, त्याग, आकिंचन्य और ब्रह्मचर्य नामक धर्म संवर के कारण हैं, ऐसा क्रिया का सम्बन्ध लगाना चाहिए। संतप्त लोहे के समान आत्मीय गुणों के विनाशक क्रोधादिक के निमित्त मिल जाने पर भी अपने हित के इच्छुक मुनिगणों के उत्तम क्षमा आदि धर्म के द्वारा क्रोधादिक का परिहार करना चाहिए।

अब संवर की कारणभूत अनुप्रेक्षाओं का कथन करने के लिए सूत्र कहते हैं:–

अनित्य, अशरण, संसार, एकत्व, अन्यत्व, अशुचि, आस्रव, संवर, निर्जरा, लोक, बोधिदुर्लभ और धर्मस्वाख्या तत्त्व का बार-बार चिन्तन करना अनुप्रेक्षा है ।।७।।